तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुङ्गव।
तस्मात्त्वमपि कल्याण पुरुषार्थाप्तिहेतवे॥ ६३

असंशयं हृदम्भोजे भज देवीपदाम्बुजम्।
सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव॥ ६४

ब्रह्माजीने वे सब बातें मुझसे कही थीं। अतः आप भी कल्याणकारी पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे सर्वथा संशयरहित होकर अपने हृदयकमलमें देवी भगवतीके चरणारविन्दका ध्यान कीजिये। वे देवी आपके समस्त अभिलषित फलोंको अवश्य प्रदान करेंगी॥ ६२-६४॥

सूत उवाच

नारदेनैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः।
देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ॥ ६५

सूतजी बोले—नारदजीके ऐसा कहनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासजी देवीके चरणारविन्दमें अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए तपश्चर्याहेतु पर्वतपर चले गये॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे देवीसर्वोत्तमेतिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीके शापसे विष्णुका मस्तक कट जाना, वेदोंद्वारा स्तुति करनेपर देवीका प्रसन्न होना, भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा

ऋषय ऊचुः

सूतास्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे।
यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम्॥ १
यन्मूर्धा माधवस्यापि गतो देहात्पुनः परम्।
हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः॥ २

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हमारा चित्त सन्देहरूपी सागरमें पूर्णतः डूबता जा रहा है; क्योंकि आपने महान् आश्चर्यजनक तथा संसारको विस्मित कर देनेवाली यह बात कह दी कि विष्णुके शरीरसे उनका सिर अलग हो गया था और वे सर्वपालक जनार्दन पुनः हयग्रीव हो गये थे॥ १-२॥

वेदोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वे यदाश्रयाः।
आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारणकारणः॥ ३
तस्यापि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा।
तत्सर्वं कथयाशु त्वं विस्तरेण महामते॥ ४

वेद भी जिन भगवान् विष्णुका स्तवन करते हैं, समस्त देवता जिनका आश्रय ग्रहण करते हैं, जो आदिदेव हैं, जगत्के स्वामी हैं और सभी कारणोंके भी कारण हैं; दैवयोगसे उनका भी मस्तक कैसे कट गया? हे महामते! वह सब आप हमसे विस्तारपूर्वक शीघ्र कहिये॥ ३-४॥

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः समन्ततः।
चरितं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः॥ ५

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभी लोग एकाग्रचित्त होकर परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् विष्णुका चरित्र सुनिये॥ ५॥

कदाचिद्दारुणं युद्धं कृत्वा देवः सनातनः।
दशवर्षसहस्राणि परिश्रान्तो जनार्दनः॥ ६

किसी समय वे सनातन देव विष्णु दस हजार वर्षोंतक भीषण युद्ध करके अत्यन्त थक गये थे॥ ६॥

समे देशे शुभे स्थाने कृत्वा पद्मासनं विभुः।
अवलम्ब्य धनुः सज्यं कण्ठदेशे धरास्थितम्॥ ७
दत्त्वा भारं धनुष्कोट्यां निद्रामाप रमापतिः।
श्रान्तत्वाद्दैवयोगाच्च जातस्तत्रातिनिद्रितः॥ ८

तदनन्तर एक समतल तथा शुभ स्थानपर पद्मासन लगाकर पृथ्वीपर स्थित प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुषपर कण्ठप्रदेश (गर्दन) टिकाये हुए उस धनुषकी नोंकपर भार देकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु सो गये और थकावटके कारण दैवयोगसे उन्हें गहरी नींद आ गयी॥ ७-८॥

तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः।
ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तुं समुद्यताः॥ ९

गताः सर्वेऽथ वैकुण्ठं द्रष्टुं देवं जनार्दनम्।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपं प्रभुम्॥ १०

कुछ समय बीतनेके बाद ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्रसहित सभी देवता यज्ञ करनेको उद्यत हुए। वे सब देवकार्यकी सिद्धिहेतु यज्ञोंके अधिपति जनार्दन भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ वैकुण्ठलोक गये॥ ९-१०॥

अदृष्ट्वा तं तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ते।
यत्रास्ते भगवान् विष्णुर्जग्मुस्तत्र तदा सुराः॥ ११

उस समय उन्हें वहाँ न देखकर वे देवतागण ज्ञान-दृष्टिसे देख करके वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान थे॥ ११॥

ददृशुस्ते तदेशानं योगनिद्रावशं गतम्।
विचेतनं विभुं विष्णुं तत्रासांचक्रिरे सुराः॥ १२

वहाँ उन्होंने सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको योग-निद्राके वशीभूत होकर अचेत पड़ा हुआ देखा। तब वे देवगण वहीं रुक गये॥ १२॥

स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥ १३

सभी देवताओंके वहाँ रुक जानेके बाद जगत्पति विष्णुको निद्रामग्न देखकर ब्रह्मा-रुद्र आदि प्रमुख देवता अत्यन्त चिन्तित हुए॥ १३॥

तानुवाच ततः शक्रः किं कर्तव्यं सुरोत्तमाः।
निद्राभङ्गः कथं कार्यश्चिन्तयन्तु सुरोत्तमाः॥ १४

तदनन्तर इन्द्रने देवताओंसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! अब क्या किया जाय? हे श्रेष्ठ देवताओ! अब आप सभी यह विचार करें कि इनकी निद्रा किस प्रकार भंग की जाय?॥ १४॥

तमुवाच तदा शम्भुर्निद्राभङ्गेऽस्ति दूषणम्।
कार्यं चैव प्रकर्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः॥ १५

तब शिवजीने इन्द्रसे कहा कि इनकी निद्राका भंग करनेसे महान् दोष लगेगा, किंतु हे श्रेष्ठ देवगण! यज्ञकार्य भी अवश्यकरणीय है॥ १५॥

उत्पादिता तदा वम्री ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
तया भक्षयितुं तत्र धनुषोऽग्रं धरास्थितम्॥ १६

इसके बाद परमेष्ठी ब्रह्माजीने पृथ्वीपर स्थित धनुषके अग्रभागको खा जानेके लिये दीमकका सृजन किया॥ १६॥

भक्षितेऽग्रे तदा निम्नं गमिष्यति शरासनम्।
तदा निद्राविमुक्तोऽसौ देवदेवो भविष्यति॥ १७

देवकार्यं तदा सर्वं भविष्यति न संशयः।
स वम्रीं संदिदेशाथ देवदेवः सनातनः॥ १८

[उन्होंने यह सोचा कि] दीमकके द्वारा धनुषका अग्रभाग खा लिये जानेपर धनुष नीचा हो जायगा। तब वे देवाधिदेव विष्णु निद्रामुक्त हो जायँगे। ऐसा होनेपर निस्सन्देह देवताओंका सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः सनातन ब्रह्माजीने दीमकको इस कार्यके लिये आदेश दिया॥ १७-१८॥

तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य मापतेः।
निद्राभङ्गः कथं कार्यो देवस्य जगतां गुरोः॥ १९

निद्राभङ्गः कथाच्छेदो दम्पत्योः प्रीतिभेदनम्।
शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमं स्मृतम्॥ २०

तब दीमकने ब्रह्माजीसे कहा कि देवाधिदेव जगद्गुरु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका निद्रा-भंग मैं कैसे करूँ? क्योंकि नींदमें बाधा डालना, कथामें विघ्न पैदा करना, पति-पत्नीके बीच भेद उत्पन्न करना एवं माँ-पुत्रके बीच वैरभाव पैदा करनेके लिये षड्यन्त्र

तत्कथं देवदेवस्य करोमि सुखनाशनम्।
किं फलं भक्षणाद्देव येन पापं करोम्यहम्॥ २१

सर्वः स्वार्थवशो लोकः कुरुते पातकं किल।
तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेव प्रभक्षणम्॥ २२

ब्रह्मोवाच

तव भागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु।
तेन त्वं कुरु कार्यं नो विष्णुं बोधय माचिरम्॥ २३

होमकर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति।
तत्ते भागं विजानीहि कुरु कार्यं त्वरान्विता॥ २४

सूत उवाच

इत्युक्ता ब्रह्मणा वम्री धनुषोऽग्रं त्वरान्विता।
चखाद संस्थितं भूमौ विमुक्ता ज्या तदाभवत्॥ २५

प्रत्यञ्चायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा।
शब्दः समभवद् घोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा॥ २६

ब्रह्माण्डं क्षुभितं सर्वं वसुधा कम्पिता तदा।
समुद्राश्च समुद्विग्नास्त्रेसुश्च जलजन्तवः॥ २७

ववुर्वातास्तथा चोग्राः पर्वताश्च चकम्पिरे।
उल्कापाता महोत्पाता बभूवुर्दुःखशंसिनः॥ २८

दिशो घोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तंगतोऽभवत्।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे किं भविष्यति दुर्दिने॥ २९

एवं चिन्तयतां तेषां मूर्धा विष्णोः सकुण्डलः।
गतः समुकुटः क्वापि देवदेवस्य तापसाः॥ ३०

अन्धकारे तदा घोरे शान्ते ब्रह्महरौ तदा।
शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम्॥ ३१

करना ब्रह्महत्याके समान कहा गया है। अतः मैं देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सुख क्यों नष्ट करूँ? हे देव! उस धनुषका अग्रभाग खानेसे मेरा क्या लाभ है, जिसके लिये मैं ऐसा पाप करूँ?॥ १९—२१॥

स्वार्थके वशीभूत होकर ही समस्त लोक पापकार्यमें प्रवृत्त होता है। इसलिये मैं भी इसमें कोई स्वार्थसिद्धि होनेपर ही इसका भक्षण करूँगा॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—सुनो, हमलोग यज्ञमें तुम्हारे भागकी व्यवस्था कर देंगे। इसलिये तुम अविलम्ब भगवान् विष्णुको जगाकर हमलोगोंका कार्य सम्पन्न कर दो॥ २३॥

होमकार्यमें आहुति प्रदान करते समय जो हव्य आस-पास गिरेगा, उसीको अपना भाग समझना; और अब तुम शीघ्रतापूर्वक हमारा कार्य करो॥ २४॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके अनन्तर दीमकने धरातलपर स्थित धनुषाग्रको शीघ्र ही खा लिया, जिससे धनुषकी डोरी मुक्त हो गयी॥ २५॥

प्रत्यंचाके खुल जानेपर धनुषका वह ऊपरी कोना मुक्त हो गया। इस प्रकार एक भीषण ध्वनि पैदा हुई जिससे वहाँ सभी देवगण भयभीत हो गये, ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा, पृथ्वीमें कम्पन होने लगा, सभी समुद्र उद्विग्न हो गये, जलचर जन्तु व्याकुल हो उठे। प्रचण्ड हवाएँ प्रवाहित होने लगीं, पर्वत प्रकम्पित हो उठे, किसी दारुण आपदाके सूचक उल्कापात आदि महान् उपद्रव होने लगे, सूर्य तिरोहित हो गये तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त भयावह हो गयीं। यह सब देखकर देवतालोग चिन्तित होकर सोचने लगे कि इस दुर्दिनमें अब क्या होगा?॥ २६—२९॥

हे तपस्वियो! वे देवतागण ऐसा सोच ही रहे थे कि किरीट-कुण्डलसहित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सिर [कटकर] कहीं चला गया॥ ३०॥

कुछ समय पश्चात् उस घोर अन्धकारके शान्त हो जानेपर ब्रह्मा और शंकरने भगवान् विष्णुका मस्तकविहीन विलक्षण शरीर देखा॥ ३१॥

दृष्ट्वा कबन्धं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः।
चिन्तासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः॥ ३२

हा नाथ किं प्रभो जातमत्यद्भुतममानुषम्।
वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन॥ ३३

मायेयं कस्य देवस्य यया तेऽद्य शिरो हृतम्।
अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसि अप्रदाह्योऽसि सर्वदा॥ ३४

एवं गते त्वयि विभो मरिष्यन्ति च देवताः।
कीदृशस्त्वयि नः स्नेहः स्वार्थेनैव रुदामहे॥ ३५

नायं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः।
देवैरेव कृतः कस्य दूषणं च रमापते॥ ३६

पराधीनाः सुराः सर्वे किं कुर्मः क्व व्रजाम च।
शरणं नैव देवेश सुराणां मूढचेतसाम्॥ ३७

न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी।
यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः॥ ३८

क्रन्दमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरोगमान्।
बृहस्पतिस्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः॥ ३९

रुदितेन महाभागाः क्रन्दितेन तथापि किम्।
उपायश्चात्र कर्तव्यः सर्वथा बुद्धिगोचरः॥ ४०

दैवं पुरुषकारश्च देवेश सदृशावुभौ।
उपायश्च विधातव्यो दैवात्फलति सर्वथा॥ ४१

इन्द्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणां चैव पश्यताम्॥ ४२

ब्रह्मोवाच

अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत्।
शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं कोऽतिक्रमेत्पुनः॥ ४३

भगवान् विष्णुका सिरविहीन धड़ देखकर वे श्रेष्ठ देवता अत्यन्त विस्मित हुए और चिन्तासागरमें निमग्न होकर शोकाकुल हो [इस प्रकार] विलाप करने लगे—॥ ३२॥

हे नाथ! हे प्रभो! यह कैसी विचित्र अलौकिक घटना हो गयी? हे देवाधिदेव! हे सनातन! हम सभी देवताओंके लिये तो यह बात विनाशकारी है॥ ३३॥

यह किस देवताकी माया है, जिसके द्वारा आपके सिरका हरण कर लिया गया। आप तो सर्वदा अच्छेद्य, अभेद्य और अदाह्य हैं॥ ३४॥

हे विभो! इस प्रकार आपके चले जानेपर हम देवता तो मृत्युको प्राप्त हो जायँगे। हमलोगोंके प्रति आपका कैसा स्नेह था। हमलोग स्वार्थके कारण ही रुदन कर रहे हैं॥ ३५॥

संकटकी यह स्थिति न तो दैत्योंने, न यक्षोंने और न राक्षसोंने ही पैदा की है, अपितु हम देवताओंने ही यह विघ्न उत्पन्न किया है; तथापि हे रमापते! इसमें किसका दोष समझा जाय?॥ ३६॥

हम सभी देवता पराश्रित हैं। हम इस समय क्या करें और कहाँ जायँ? हे देवेश! हम मूढ़ बुद्धिवाले देवताओंके लिये अब कहीं भी कोई शरण नहीं है॥ ३७॥

यह कोई सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी माया भी नहीं है, जिसके द्वारा आप मायापति जगद्गुरुका सिर काटा गया है॥ ३८॥

तब शिवसहित समस्त देवताओंको करुण क्रन्दन करते हुए देखकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ देवगुरु बृहस्पतिने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे महाभागो! अब इस प्रकार क्रन्दनसे क्या लाभ है? इस समय तो विवेकका आश्रय लेकर कोई उपाय करना चाहिये। हे देवेन्द्र! भाग्य एवं पुरुषार्थ—दोनों ही समान श्रेणीके हैं फिर भी उपाय करना ही चाहिये और वह दैवयोगसे ही सफल होता है॥ ३९—४१॥

इन्द्र बोले—अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, मैं तो दैवको श्रेष्ठतर मानता हूँ; क्योंकि हम देवताओंके देखते-देखते विष्णुका सिर कट गया॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—कालद्वारा जो भी शुभाशुभ कर्मोंका फल निर्धारित है, उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है; भाग्यका अतिक्रमण कौन कर सकता है?॥ ४३॥

देहवान्सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः।
यथा कालवशात्कृत्तं शिरो मे शम्भुना पुरा॥ ४४

तथैव लिङ्गपातश्च महादेवस्य शापतः।
तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणाम्भसि॥ ४५

सहस्रभगसंप्राप्तिर्दुःखं चैव शचीपतेः।
स्वर्गाद् भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे॥ ४६

एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते।
संसारेऽस्मिन्महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै॥ ४७

चिन्तयन्तु महामायां विद्यादेवीं सनातनीम्।
सा विधास्यति नः कार्यं निर्गुणा प्रकृतिः परा॥ ४८

ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा।
यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४९

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेश ह।
देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थसिद्धये॥ ५०

ब्रह्मोवाच

स्तुवन्तु परमां देवीं ब्रह्मविद्यां सनातनीम्।
गूढाङ्गीं च महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम्॥ ५१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वाङ्गसुन्दराः।
तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यां तां महामायां जगत्स्थिताम्॥ ५२

वेदा ऊचुः

नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे।
निर्गुणे सर्वभूतेशि मातः शङ्करकामदे॥ ५३

त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणाः प्राणवतां तथा।
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः॥ ५४

प्रत्येक प्राणी काल-क्रमके अनुसार सुख-दुःख भोगता ही है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिस प्रकार पूर्वकालमें कालकी प्रेरणासे शंकरजीने मेरा मस्तक काट दिया था, उसी प्रकार शापके कारण शिवजीका लिंग कटकर गिर गया था और उसी प्रकार आज विष्णुका सिर [कटकर] लवणसागरमें जा गिरा है॥ ४४-४५॥

[दैवयोगसे ही] इन्द्रको भी सहस्र भगोंकी प्राप्ति हुई। उन्हें दुःख भोगना पड़ा। वे स्वर्गसे च्युत हो गये और मानसरोवरके कमलमें रहने लगे॥ ४६॥

इस संसारमें जब इन महाभाग देवताओंको भी दुःखका भोग करनेके लिये विवश होना पड़ा तो फिर दुःख भोगनेसे भला कौन वंचित रह सकता है? अतएव आपलोग शोकका परित्याग कर दें और उन महामाया, विद्यारूपा, सनातनी, ब्रह्मविद्या तथा जगत्को धारण करनेवाली देवीका ध्यान कीजिये, जिनके द्वारा यह चराचर सम्पूर्ण त्रिलोक व्याप्त है। वे निर्गुणा परा प्रकृति हमलोगोंका समस्त कार्य सिद्ध कर देंगी॥ ४७—४९॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीने कार्यकी सिद्धिकी कामनासे अपने सम्मुख सशरीर विद्यमान वेदोंको आदेश दिया॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—आपलोग समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाली, पराम्बा, ब्रह्मविद्या, सनातनी तथा निगूढ़ अंगोंवाली महामायाका स्तवन कीजिये॥ ५१॥

उनका यह वचन सुनकर समस्त सुन्दर अंगोंवाले वेद जगत्की आधारस्वरूपा तथा ज्ञानगम्या उन महामायाकी स्तुति करने लगे॥ ५२॥

वेदोंने कहा—हे देवि! हे महामाये! हे विश्वोत्पत्तिकारिणि! हे शिवे! हे निर्गुणे! हे सर्वभूतेशि! हे शिवकामार्थ-प्रदायिनि माता! आपको नमस्कार है॥ ५३॥

आप सभी प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये पृथ्वीस्वरूपा हैं तथा प्राणधारियों[illegible] बुद्धि, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति, [illegible] एवं स्मृति सब कुछ आप ही हैं।

त्वमुद्गीथेऽर्धमात्रासि गायत्री व्याहृतिस्तथा।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया॥ ५५

ॐकारमें अर्धमात्राके रूपमें आप ही विराजमान हैं। आप गायत्री, भूः, भुवः, स्वः आदि व्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा एवं दया सभी कुछ हैं॥ ५५॥

त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधान-
दक्षां दयारसयुतां जननीं जनानाम्।
विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां
वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम्॥ ५६

हे अम्ब! आप तीनों लोकोंके रचना-तन्त्रमें दक्ष, करुणरससे युक्त, सभी प्राणियोंकी माँ, विद्या, कल्याणी, सभी प्राणियोंकी हितसाधिका, सर्वश्रेष्ठ, वाग्बीजमन्त्रमें वास करनेमें निपुण तथा संसारका क्लेश दूर करनेवाली हैं; आपकी हम स्तुति करते हैं॥ ५६॥

ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्र-
वाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः।
ते त्वत्कृताः सन्ति ततो न मुख्या
माता यतस्त्वं स्थिरजङ्गमानाम्॥ ५७

ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सूर्य तथा सभी भुवनोंके स्वामी आपके द्वारा ही निर्मित किये गये हैं। अतः उनकी अपनी कोई विशेषता नहीं है; आप ही सभी चराचर जगत्की माता हैं॥ ५७॥

सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं
सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान्।
स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा
न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः॥ ५८

हे जननि! जब आप जगत्की रचनाकी कामना करती हैं, तब आप सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन प्रमुख देवोंका सृजन करती हैं। उन्हींके माध्यमसे एकमात्र आप ही जगत्का सृजन, पालन एवं संहारकार्य पूर्ण कराती हैं। हे देवि! आपमें संसारका लेशमात्र भी नहीं रहता॥ ५८॥

न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो
न नाम्नां संख्यां ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः।
यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु नरः
कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्दृतमतिः॥ ५९

हे देवि! सम्पूर्ण संसारमें ऐसा कोई भी निपुण प्राणी नहीं है, जो आपके रूपको जान सके और न तो ऐसा कोई योग्य मनुष्य है, जो आपके नामोंकी संख्याकी गणना करनेमें समर्थ हो। जो थोड़ेसे जलका सन्तरण करनेमें असमर्थ हो, वह बुद्धिसम्पन्न मनुष्य भला महासागरको पार करनेमें कुशल कैसे होगा?॥ ५९॥

न देवानां मध्ये भगवति तवानन्तविभवं
विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकासि जननी।
कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि
प्रमाणं त्वेतस्मिन्निगमवचनं देवि विहितम्॥ ६०

हे भगवति! आपके अन्तहीन वैभवको जान सकनेमें देवताओंमें कोई भी समर्थ नहीं है। एकमात्र आप समस्त विश्वकी माता हैं। आप अकेले ही इस सम्पूर्ण मिथ्या जगत्की रचना कैसे करती हैं? हे देवि! एकमात्र वेदवाक्य ही आपके इस सृष्टि-कार्यकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं॥ ६०॥

निरीहैवासि त्वं निखिलजगतां कारणमहो
चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति।
कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुण-
प्रभावः स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम्॥ ६१

हे भगवति! समग्र जगत्की परम कारणस्वरूपा होती हुई भी आप इच्छारहित हैं। अहो! आपका अद्भुत चरित्र हमारे मनको विस्मित कर देता है। समस्त वेदोंसे भी अज्ञेय आपके गुणों एवं प्रभावोंका वर्णन हमलोग भला किस प्रकार कर सकते हैं; क्योंकि स्वयं आप भी अपने परमतत्त्वको नहीं जानतीं॥ ६१॥

न किं जानासि त्वं जननि मधुजिन्मौलिपतनं
शिवे किं वा ज्ञात्वा विविदिषसि शक्तिं मधुजितः।
हरेः किं वा मातर्दुरिततितिरेषा बलवती
भवत्याः पादाब्जे भजननिपुणे क्वास्ति दुरितम्॥ ६२

हे जननि! क्या आप भगवान् विष्णुके शिरोच्छेदनकी घटना नहीं जानती हैं? हे शिवे! अथवा क्या यह जानकर भी आप मधुजित् विष्णुकी शक्तिकी परीक्षा करना चाहती हैं? हे माता! अथवा क्या यह विष्णुके महान् पापसमूहका फल है? किंतु आपके चरणकमलोंका भजन करनेमें निपुण प्राणीसे तो पाप हो ही नहीं सकता॥ ६२॥

उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा
हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिह महाश्चर्यजनकम्।
महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला
न जानीमो मौलेर्विघटनविलम्बः कथमभूत्॥ ६३

हे माता! आप इस देवसमूहकी भारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं? भगवान् विष्णुके मस्तक कटनेकी घटना हमारे लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा महान् कष्टदायक बात है। हे माता! आप जननरूपी दुःखका नाश करनेमें कुशल हैं, अब हम यह नहीं जान पा रहे हैं कि विष्णुके सिर-संयोजनमें विलम्ब क्यों हो रहा है?॥ ६३॥

ज्ञात्वा दोषं सकलसुरतापादितं देवि चित्ते
किं वा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते।
विष्णोर्वा किं समरजनितः कोऽपि गर्वोऽतिवेगा-
च्छेत्तुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम्॥ ६४

हे देवि! सभी देवताओंके देवत्वाभिमानरूपी दोषको अपने मनमें समझकर आपने ही ऐसा किया है, अथवा देवजन्य दुष्कृतको विष्णुमें स्थापित किया है, अथवा विष्णुको संग्राम-विजय करनेका अहंकार हो गया था, जिसे अतिशीघ्र दूर करनेके लिये आपने यह लीला रची है। हे माता! हम आपके मनोभावोंको समझनेमें पूर्णतया असमर्थ हैं॥ ६४॥

किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये
घोरं तप्त्वा भगवति वरं लब्धवद्भिर्भवत्याः।
अन्तर्धानं गमितमधुना विष्णुशीर्षं भवानि
द्रष्टुं किं वा विगतशिरसं वासुदेवं विनोदः॥ ६५

हे भगवति! अथवा युद्धमें पराभूत किये गये दैत्योंने किसी मनोहर तीर्थमें घोर तपस्या करके आपसे वरदान प्राप्त कर लिया है, जो विष्णुके सिर कटनेका कारण बना। हे भवानि! अथवा विष्णुको सिरविहीनरूपमें देखनेके लिये आप इस समय कोई विनोद कर रही हैं॥ ६५॥

सिन्धोः पुत्र्यां रोषिता किं त्वमाद्ये
कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम्।
क्षन्तव्यस्ते स्वांशजातापराधो
व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व॥ ६६

हे आद्ये! आप सिंधुसुता लक्ष्मीपर किसी कारणसे आक्रोशित तो नहीं हैं। आप उन्हें स्वामीविहीन किसलिये देखना चाह रही हैं? आप अपने ही अंशसे प्रादुर्भूत लक्ष्मीका अपराध क्षमा करें और भगवान् विष्णुको जीवनदान देकर रमाको प्रसन्न कर दें॥ ६६॥

एते सुरास्त्वां सततं नमन्ति
कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः।
शोकार्णवात्तारय देवि देवा-
नुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम्॥ ६७

जगत्के समस्त कार्योंको सम्पादित करनेमें प्रमुख भूमिकावाले अतिशय प्रभावशाली ये देवता आपको निरन्तर नमस्कार करते हैं। हे देवि! सर्वलोकाधिपति विष्णुको जीवित करके आप देवताओंको शोकसागरसे पार कीजिये॥ ६७॥

मूर्धा गतः क्वाम्ब हरेर्न विद्मो
नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य।
यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा
तथा जगज्जीवितदासि देवि॥ ६८

हे अम्ब! भगवान् विष्णुका सिर छिन्न होकर कहाँ चला गया—यह हम नहीं जानते हैं और इस समय इन्हें जीवित करनेके लिये अन्य कोई युक्ति भी नहीं सूझ रही है। हे देवि! मृत प्राणीको जीवित करनेमें जिस प्रकार अमृत समर्थ है, उसी प्रकार समग्र संसारकी आप जीवनदात्री हैं॥ ६८॥

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी।
प्रसन्ना परमा माया वेदैः साङ्गैश्च सामगैः॥ ६९

सूतजी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार सामगान-निपुण सांगवेदोंद्वारा स्तुति किये जानेसे गुणातीता, महेश्वरी, परात्परा महामाया भगवती प्रसन्न हो गयीं॥ ६९॥

तानुवाच तदा वाणी चाकाशस्थाशरीरिणी।
देवान्प्रति सुखैः शब्दैर्जनानन्दकरी शुभा॥ ७०

उसी समय देवताओंको सुख प्रदान करनेवाले शब्दोंसे युक्त और भक्तजनोंको आनन्दित करनेवाली आकाशस्थित अशरीरिणी शुभ वाणीने उनसे कहा॥ ७०॥

मा कुरुध्वं सुराश्चिन्तां स्वस्थास्तिष्ठन्तु चामराः।
स्तुताहं निगमैः कामं सन्तुष्टास्मि न संशयः॥ ७१

हे देवताओ! आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें और स्वस्थचित्त रहें। हे अमरगण! इन वेदोंके भावपूर्ण स्तवनसे मैं परम प्रसन्न हो गयी हूँ, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ७१॥

यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येतां मामकीं स्तुतिम्।
पठिष्यति सदा भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ७२

मनुष्यलोकमें जो प्राणी इस स्तुतिसे मेरी आराधना करेगा अथवा भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेगा, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी॥ ७२॥

शृणोति वा स्तोत्रमिदं मदीयं
भक्त्या त्रिकालं सततं नरो यः।
विमुक्तदुःखः स भवेत्सुखी च
वेदोक्तमेतन्ननु वेदतुल्यम्॥ ७३

जो मनुष्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न, सायं) मेरी स्तुतिको नित्य भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह सभी दुःखोंसे विमुक्त होकर परम सुखी हो जायगा। वेदोंद्वारा उच्चारित किये जानेके कारण यह स्तुति वेदोंके समान ही है॥ ७३॥

शृण्वन्तु कारणं चाद्य यद्गतं वदनं हरेः।
अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति॥ ७४

हे देवो! अब आप विष्णुके शिरोच्छेदका कारण सुनिये; क्योंकि इस लोकमें बिना कारण कोई कार्य कैसे हो सकता है?॥ ७४॥

उदधेस्तनयां विष्णुः संस्थितामन्तिके प्रियाम्।
जहास वदनं वीक्ष्य तस्यास्तत्र मनोरमम्॥ ७५

एक बार अपने समीप बैठी हुई अपनी प्रियतमा सागरपुत्री लक्ष्मीका चित्ताकर्षक मुख देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े॥ ७५॥

तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभुः।
विरूपं हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना॥ ७६

विनापि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य सम्भवः।
सपत्नीव कृता तेन मन्येऽन्या वरवर्णिनी॥ ७७

उन्होंने सोचा कि भगवान् विष्णु मुझे देखकर क्यों हँस पड़े? मेरे मुखमें विष्णुजीद्वारा दोष देखे जानेका आखिर क्या कारण हो सकता है? और फिर बिना किसी कारणके उनका हँसना सम्भव नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी अन्य सुन्दर स्त्रीको मेरी सौत बना लिया है॥ ७६-७७॥

ततः कोपयुता जाता महालक्ष्मी तमोगुणा।
तामसी तु तदा शक्तिस्तस्या देहे समाविशत्॥ ७८

इसी विचार-मन्थनके परिणामस्वरूप लक्ष्मीजी कोपाविष्ट हो गयीं और तब उनके शरीरमें तमोगुणसम्पन्न तामसी शक्ति व्याप्त हो गयी॥ ७८॥

केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये।
प्रविष्टा तामसी शक्तिस्तस्या देहेऽतिदारुणा॥ ७९

तदनन्तर किसी दैवयोगके प्रभावसे देवताओंके कार्य-साधनके उद्देश्यसे ही उनके शरीरमें अत्यन्त उग्र तामसी शक्ति प्रविष्ट हुई॥ ७९॥

तामस्याविष्टदेहा सा चुकोपातिशयं तदा।
शनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः॥ ८०

तब लक्ष्मीजीके शरीरमें तामसी शक्तिका समावेश हो जानेके कारण वे अत्यन्त क्रोधित हो उठीं और उन्होंने मन्द स्वरमें यह कहा—'तुम्हारा यह सिर कटकर गिर जाय'॥ ८०॥

स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः।
अविचार्य तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः॥ ८१

सपत्नीसम्भवं दुःखं वैधव्यादधिकं त्विति।
विचिन्त्य मनसेत्युक्तं तामसीशक्तियोगतः॥ ८२

स्त्रीस्वभावके कारण, भावीवश तथा संयोगसे बिना सोचे-समझे ही लक्ष्मीजीने अपने ही सुखको विनष्ट करनेवाला शाप दे दिया। सौतके व्यवहारादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख वैधव्यसे भी बढ़कर होता है। मनमें ऐसा सोचकर तथा शरीरपर तामसी शक्तिका प्रभाव रहनेके कारण उन्होंने ऐसा कह दिया था॥ ८१-८२॥

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥ ८३

मिथ्याचरण, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता तथा दयाहीनता—ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं॥ ८३॥

सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा पुरा।
शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नं लवणाम्बुधौ॥ ८४

अब मैं उन वासुदेवको पूर्वकी भाँति सिरयुक्त कर देती हूँ। इनका सिर पूर्वशापके कारण लवणसागरमें डूब गया है॥ ८४॥

अन्यच्च कारणं किञ्चिद्वर्तते सुरसत्तमाः।
भवतां च महत्कार्यं भविष्यति न संशयः॥ ८५

हे श्रेष्ठ देवताओ! इस घटनाके होनेमें एक अन्य भी कारण है। आपलोगोंका महान् कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८५॥

पुरा दैत्यो महाबाहुर्हयग्रीवोऽतिविश्रुतः।
तपश्चक्रे सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम्॥ ८६

प्राचीन कालमें महाबाहु एवं अति प्रसिद्ध हयग्रीव नामवाला एक दानव था, जो सरस्वतीनदीके तटपर बहुत कठोर तपस्या करने लगा॥ ८६॥

जपन्नेकाक्षरं मन्त्रं मायाबीजात्मकं मम।
निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः॥ ८७

वह दैत्य आहारका त्यागकर समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके तथा सभी प्रकारके भोगैश्वर्यसे दूर रहते हुए मेरे मायाबीजात्मक एकाक्षर मन्त्र (ह्रीं)-का जप करता रहा॥ ८७॥

ध्यायन्मां तामसीं शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम्।
एवं वर्षसहस्रं च तपश्चक्रेऽतिदारुणम्॥ ८८

इस प्रकार समस्त आभूषणोंसे विभूषित मेरी तामसी शक्तिका सतत ध्यान करता हुआ वह एक हजार वर्षोंतक कठोर तप करता रहा॥ ८८॥

तदाहं तामसं रूपं कृत्वा तत्र समागता।
दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन यादृशम्॥ ८९

उस समय उस दैत्यने जिस रूपमें मेरा ध्यान किया था, उसी तामसरूपमें उसे दर्शन देनेहेतु उसके समक्ष मैं प्रकट हुई॥ ८९॥

सिंहोपरि स्थिता तत्र तमवोचं दयान्विता।
वरं ब्रूहि महाभाग ददामि तव सुव्रत॥ ९०

उस समय सिंहपर आरूढ़ हुई मैंने दयापूर्वक उससे कहा—हे महाभाग! तुम वरदान माँगो; हे सुव्रत! मैं तुम्हें यथेच्छ वरदान दूँगी॥ ९०॥

इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः।
प्रदक्षिणां प्रणामं च चकार त्वरितस्तदा॥ ९१

दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः।
हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा॥ ९२

वह दानव देवीका यह वचन सुनकर प्रेमविह्वल हो उठा और उसने तत्काल प्रणाम और प्रदक्षिणा की। मेरा रूप देखते ही प्रेमभावनाके कारण प्रफुल्लित नेत्रोंवाला तथा हर्षातिरेकके कारण अश्रुपूरित नयनोंवाला वह दानव मेरी स्तुति करने लगा॥ ९१-९२॥

हयग्रीव उवाच

नमो देव्यै महामाये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
भक्तानुग्रहचतुरे कामदे मोक्षदे शिवे॥ ९३

हयग्रीव बोला—हे महामाये! हे जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली! हे भक्तोंपर कृपा करनेमें निपुण! हे सकल कामनाप्रदायिनि! हे मोक्षदायिनि! हे शिवे! आप देवीको नमस्कार है॥ ९३॥

धराम्बुतेजःपवनखपञ्चानां च कारणम्।
त्वं गन्धरसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः॥ ९४

पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पाँच महाभूतोंका कारण आप ही हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—इन तत्त्वोंका कारण भी आप ही हैं॥ ९४॥

घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रमिन्द्रियाणि च।
कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि त्वत्तः सर्वं महेश्वरि॥ ९५

हे महेश्वरि! नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान—ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पैर, वाक्, लिंग, गुदा—ये कर्मेन्द्रियाँ आपसे ही उत्पन्न हैं॥ ९५॥

देव्युवाच

किं तेऽभीष्टं वरं ब्रूहि वाञ्छितं यद्ददामि तत्।
परितुष्टास्मि भक्त्या ते तपसा चाद्भुतेन च॥ ९६

देवी बोलीं—तुम्हारा क्या अभीष्ट है? जो कुछ भी तुम्हारा अभिलषित वर हो, माँग लो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी; क्योंकि मैं तुम्हारी अनन्य भक्ति तथा अद्भुत तपस्यासे अतिशय प्रसन्न हूँ॥ ९६॥

हयग्रीव उवाच

यथा मे मरणं मातर्न भवेत्तत्तथा कुरु।
भवेयममरो योगी तथाजेयः सुरासुरैः॥ ९७

हयग्रीव बोला—हे माता! आप मुझे वैसा वरदान दें, जिससे मेरी मृत्यु कभी न हो और देव-दानवोंद्वारा अपराजेय रहता हुआ मैं सदाके लिये अमर योगी हो जाऊँ॥ ९७॥

देव्युवाच

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
मर्यादा चेदृशी लोके भवेच्च कथमन्यथा॥ ९८

देवी बोलीं—जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म भी निश्चित है। लोकमें स्थापित इस प्रकारकी मर्यादाका उल्लंघन कैसे सम्भव है?॥ ९८॥

एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम।
वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल॥ ९९

अतएव हे दानवश्रेष्ठ! मृत्युको अवश्यम्भावी जानकर अपने मनमें सम्यक् विचार करके तुम अन्य यथेच्छ वर माँग लो॥ ९९॥

हयग्रीव उवाच

हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माज्जगदम्बिके।
इति मे वाञ्छितं कामं पूरयस्व मनोगतम्॥ १००

देव्युवाच

गृहं गच्छ महाभाग कुरु राज्यं यथासुखम्।
हयग्रीवादृते मृत्युर्न ते नूनं भविष्यति॥ १०१

इति दत्त्वा वरं तस्मा अन्तर्धानं गता तथा।
मुदं परमिकां प्राप्य सोऽपि स्वभवनं गतः॥ १०२

स पीडयति दुष्टात्मा मुनीन् वेदांश्च सर्वशः।
न कोऽपि विद्यते तस्य हन्ताद्य भुवनत्रये॥ १०३

तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम्।
देहेऽत्र विशिरोविष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति॥ १०४

हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तमासुरम्।
पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया॥ १०५

सूत उवाच

एवं सुरांस्तदाभाष्य शर्वाणी विरराम ह।
देवास्तदातिसन्तुष्टास्तमूचुर्देवशिल्पिनम्॥ १०६

देवा ऊचुः

कुरु कार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षाभियोजनम्।
दानवप्रवरं दैत्यं हयग्रीवो हनिष्यति॥ १०७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः।
वाजिशीर्षं चकर्ताशु खड्गेन सुरसन्निधौ॥ १०८

विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम्।
हयग्रीवो हरिर्जातो महामायाप्रसादतः॥ १०९

कियता तेन कालेन दानवो मददर्पितः।
निहतस्तरसा संख्ये देवानां रिपुरोजसा॥ ११०

य इदं शुभमाख्यानं शृण्वन्ति भुवि मानवाः।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्ते भवन्ति न संशयः॥ १११

हयग्रीव बोला—हे जगदम्बे! मेरी मृत्यु हयग्रीवसे ही हो, किसी अन्यसे नहीं। मेरी इसी मनोवांछित कामनाको आप पूर्ण करें॥ १००॥

देवी बोलीं—हे महाभाग! अपने घर जाकर अब तुम सुखपूर्वक राज्य करो। हयग्रीवके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी तुम्हारी कदापि मृत्यु नहीं होगी॥ १०१॥

उस दैत्यको यह वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गयी और वह भी परम प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १०२॥

वह दुष्टात्मा इस समय मुनिजनों तथा वेदोंको हर प्रकारसे पीड़ित कर रहा है और तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसका संहार कर सके॥ १०३॥

अतः त्वष्टा इस अश्वका मनोहर सिर अलग करके उसे इन सिरविहीन विष्णुके धड़पर संयोजित कर देंगे॥ १०४॥

तत्पश्चात् देवताओंके कल्याणार्थ भगवान् हयग्रीव उस पापात्मा, अत्यन्त क्रूर तथा दानवी स्वभाववाले महा असुर हयग्रीवका संहार करेंगे॥ १०५॥

सूतजी बोले—देवताओंसे इस प्रकार कहकर भगवती शान्त हो गयीं और इसके बाद देवगण परम सन्तुष्ट होकर देवशिल्पी विश्वकर्मासे बोले॥ १०६॥

देवताओंने कहा—आप विष्णुके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़कर देवताओंका कार्य कीजिये। वे भगवान् हयग्रीव ही दानवश्रेष्ठ दैत्यका वध करेंगे॥ १०७॥

सूतजी बोले—देवताओंका यह वचन सुनकर विश्वकर्माने अतिशीघ्रतापूर्वक अपने खड्गसे देवताओंके सामने ही घोड़ेका सिर काटा। तत्पश्चात् उन्होंने घोड़ेका वह सिर अविलम्ब विष्णुभगवान्‌के शरीरमें संयोजित कर दिया और इस प्रकार महामाया भगवतीकी कृपासे वे भगवान् विष्णु हयग्रीव हो गये॥ १०८-१०९॥

कुछ समय बाद उन भगवान् हयग्रीवने अहंकारके मदमें चूर उस देवशत्रु दानवका युद्धभूमिमें अपने तेजसे वध कर दिया॥ ११०॥

इस संसारमें जो प्राणी इस पवित्र कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ १११॥

महामायाचरित्रञ्च पवित्रं पापनाशनम्।
पठतां शृण्वतां चैव सर्वसम्पत्तिकारकम्॥ ११२

महामाया भगवतीका चरित्र अति पावन है तथा पापोंका नाश कर देता है। इस चरित्रका पाठ तथा श्रवण करनेवाले प्राणियोंको सभी प्रकारकी सम्पदाएँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं॥ ११२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे हयग्रीवावतारकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

~~ o ~~

अथ षष्ठोऽध्यायः

शेषशायी भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधु-कैटभकी उत्पत्ति तथा उन दोनोंका ब्रह्माजीसे युद्धके लिये तत्पर होना

ऋषय ऊचुः

सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धं महार्णवे।
मधुकैटभयोः सार्धं पञ्चवर्षसहस्रकम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! आपने मधु और कैटभके साथ भगवान् विष्णुद्वारा महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किये जानेकी पहले चर्चा की थी॥ १॥

कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मिन्नेकार्णवे जले।
महावीर्यौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ॥ २

महावीर्यसम्पन्न, किसीसे भी पराभूत न होनेवाले तथा देवताओंसे भी अपराजेय वे दोनों दानव उस एकार्णवके जलमें किससे प्रादुर्भूत हुए?॥ २॥

कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणा हतौ।
तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमाद्भुतम्॥ ३

वे असुर क्यों उत्पन्न हुए तथा भगवान्‌के द्वारा उनका वध क्यों किया गया? हे महामते! आप यह परम अद्भुत आख्यान हमको सुनाइये॥ ३॥

श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वं वक्ता च बहुश्रुतः।
दैवाच्चात्रैव संजातः संयोगश्च तथावयोः॥ ४

हमलोग यह कथा सुननेको इच्छुक हैं और आप अति प्रसिद्ध वक्ता हैं। हमारा और आपका यह सम्पर्क दैवयोगसे ही हुआ है॥ ४॥

मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः।
विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः॥ ५

मूर्खके साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विषसे भी अधिक अनिष्टकर होता है और इसके विपरीत विद्वानोंका सम्पर्क पीयूषरसके तुल्य माना गया है॥ ५॥

जीवन्ति पशवः सर्वे खादन्ति मेहयन्ति च।
जानन्ति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम्॥ ६

न तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः।
पशुभिस्ते समा ज्ञेया येषां न श्रवणादरः॥ ७

पशु भी जीवनयापन करते हैं, वे भी आहार ग्रहण करते हैं, मल-मूत्रादिका विसर्जन करते हैं और विषयासक्त होकर इन्द्रियजन्य सुखकी अनुभूति करते हैं; किंतु उनमें अच्छे-बुरेका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता तथा वे मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले विवेकसे भी रहित होते हैं। अतएव उत्तम बातोंको सुननेमें जो लोग श्रद्धा-भाव नहीं रखते, उन्हें पशु-तुल्य ही समझना चाहिये॥ ६-७॥